Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

# पुराणों में सृष्टि विवेचन

डॉ0उधम मौर्य
(भूतपूर्व शोधछात्र)
दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी,उत्तर प्रदेश,भारत।

**सारांश :** पुराणों में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। पुराणों सृष्टि का मूल कारण परमात्मा को माना गया है। उन्हें सभी जगह उपस्थित होने के कारण वासुदेव कहा जाता है। वे भगवान ही सृष्टि के त्रिविध प्रयोजन सृष्टिस्थिति–संहार के निमित्त क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन संज्ञाओं को धारण करते हैं। पुरुष और प्रकृति के संयोग से इस सृष्टि का विकास होता है।

**मुख्य शब्द :** ब्राह्मी –सृष्टि, रौद्री सृष्टि, अंगज सृष्टि, मानवी एवं मैथुनी सृष्टि, सिसृक्षोन्मुख, हिरण्यगर्भ।

सम्पूर्ण चराचर जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का तथा मानव जाति के आदिम इतिवृत्त का पुराणों से अधिक स्पष्ट एवं प्रमाणिक विवरण उपलब्ध नहीं होता। भारतीय इतिहास तथा संस्कृति की दृष्टि से भी पुराणों का महत्त्व है। शैव, शाक्त तथा वैष्णवादिक सम्प्रदायों के लिए तो पुराण आधारभूत हैं ही वरन् ये सम्पूर्ण भारतीय जीवन–पद्धति, वर्णाश्रम व्यवस्था, आचार–विचार तथा ज्ञान–विज्ञान के विश्वकोश है।[1] पुराणों के सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित पाँच लक्षण है।[2] पंचलक्षणात्मक पुराणों के प्रमुख विषयों में सृष्टि–निरूपण का प्रमुख स्थान है। ईश्वर की प्रेरणा से गुणों में विक्षोभ होने से आकाशादि पंचभूतों, शब्दादि तन्मात्राओं, इन्द्रियों, अहंकार और महतत्व की उत्पत्ति होती है, उसको सर्ग कहते हैं।[3] उस विराट पुरुष से उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा जो विभिन्न चराचर सृष्टियों का निर्माण होता है, उसे भागवत में विसर्ग कहा जाता है।[4]

**सृष्टि का मूल कारण–** विष्णुपुराण में आदि सृष्टि के विषय में कहा गया है कि पर से भी पर परम श्रेष्ठ आत्मा में स्थित परमात्मा है। वह रूप, वर्ण, नाम और विशेषणादि के निर्देश से तथा विभिन्न अवस्थाओं से रहित है। जिसमें जन्म, वृद्धि, परिणाम, क्षय और नाश इन विकारों का सर्वदा अभाव है। जिसको केवल हैं इतना कह सकते है तथा वह सर्वत्र है और समस्त प्रपंचात्मक विश्व उसमें समाहित है। जिसे सर्वत्र संस्थित होने के कारण वासुदेव कहते हैं।[5] वही नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय तथा एक रूप होने और हेय गुणों के अभाव के कारण निर्मल परम ब्रह्म है। वही ब्रह्म अव्यक्त जगत् के रूप से तथा पुरुष और काल के रूप में स्थित है।[6] वह एक ही भगवान सृष्टि के त्रिविध प्रयोजन सृष्टिस्थिति–संहार के निमित्त क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन संज्ञाओं को धारण करते हैं।[7]

परमात्मा के सिसृक्षोन्मुख से युक्त होने पर पुरुष बनता है। विष्णुपुराण के अनुसार परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष है। व्यक्त, अव्यक्त और काल उसके अन्य रूप हैं।[8] भागवत पुराण के अनुसार यह सम्पूर्ण चराचर जिससे व्याप्त होकर प्रकाशित होता है, वह आत्मा ही पुरुष है। वह अन्तःकरण में स्फुरित होने वाला स्वयं प्रकाश है।[9]

पुरुष के बाद प्रकृति सृष्टि का दूसरा प्रमुख तत्त्व है। मत्स्य पुराण में सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहा गया है।[10] वायु पुराण में अव्यक्त कारण अर्थात प्रकृति को नित्य और सत् तथा असत् स्वरूप वाला बताया गया है। तत्त्वेत्ताओं ने उस परम अव्यक्त कारण को ही प्रधान कहा है।[11] प्रकृति को अन्य शास्त्रों में तम, ज्येष्ठ, अव्यक्त, स्वधा, सत्व, अजा, क्षेत्र, विधान, गौः, क्षर, परा, सत्य और अलिंगा कहा गया है। प्रकृति या प्रधान को पुराणों में एक सूक्ष्म तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। इस सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व से ही सम्पूर्ण प्रपंचयुक्त चराचर का आविर्भाव होता है। जिस प्रकार परमेश्वर महान योग साधकों द्वारा ध्यानगम्य है उसी प्रकार सूक्ष्म तत्व प्रकृति या प्रधान बोधगम्य है। जिस प्रकार परब्रह्म परमात्मा का वर्णन करने में वाणी असमर्थ है उसी प्रकार इस प्रकृति के स्वरूप और लक्षण से विस्पष्ट करने में विज्ञ पुरुष भी समर्थ नहीं हैं।[12]

पुराणों के अनुसार ब्रह्म ही इस सृष्टि का मूल कारण है। वह ब्रह्म ही व्यक्त और अव्यक्त जगत् के रूप से तथा इसके साक्षी पुरुष और काल के रूप स्थित है। प्रधान, पुरुष, अव्यक्त और काल – ये पमात्मा विष्णु के रूप कहे गये हैं। वह इन चार रूपों या शक्तियों के सहयोग से संसार का सृजन, पालन एवं संहार करता है। यह व्यक्ताव्यक्त रूप संसार विष्णु के लिए क्रीड़ा या खेल के समान है। जैसे बालक खेल–खेल में अनेक प्रकार के खिलौने बनाया करते हैं उसी प्रकार भगवान विष्णु भी सृष्टि की रचना करते हैं।[13] श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार – मायापति भगवान ने एक से बहुत होने ही इच्छा होने पर स्वमाया से अपने रूप में स्वयं प्राप्त काल, स्वभाव और कर्म इन तीन शक्तियों को स्वीकार किया। तत्पश्चात् काल शक्ति ने सत्व, रजस और तमस इन तीन गुणों में क्षोभ उत्पन्न किया, स्वभाव ने उन्हें रूपान्तरित किया तथा कर्म ने महत् को जन्म दिया। इसी पुराण में अन्यत्र कहा गया है कि भगवान ने काल वृत्ति से गुणमयी माया में स्वयं पुरुष रूप से वीर्याधान किया। तब उस काल प्रेरित अव्यक्त से महत्तत्व की उत्पत्ति हुई।[14] कूर्म पुराण के अनुसार यह परमात्मा परमेश्वर पर योग के द्वारा पुरुष और प्रकृति में अधिष्ठित होकर क्षोभ उत्पन्न करता है, जैसे जब नर और स्त्रियों को मद उत्पन्न होता है या माधव अनिल प्रविष्ट होता है वैसे ही यह योगमूर्ति पुरुष क्षोभ के निमित्त होता है। वही क्षोभकर्त्ता और क्षोभ के योग्य है इस प्रकार क्षोभ्यमान पुरुष और प्रकृति से प्रधान पुरुषात्मक महत् बीज का आविर्भाव हुआ।

विश्व का कारण ब्रह्म ही इन तीनों अवस्थाओं से होकर उत्पन्न होता है। जैसे वृक्ष की उत्पत्ति उसके कारणभूत बीज, अंकुर एवं पुनः वृक्ष – इन तीन अवस्थाओं से जुटी हुई है वैसे ही इन तीनों अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि पुरुष और प्रकृति की सृष्टि के पूर्व की अवस्था को हम कारण के अन्तर्गत ले सकते हैं। पुनः महत्तत्व से भूततत्वों तक की स्थिति को हम कारण से उत्पन्न हिरण्यगर्भ की अवस्था को समझ सकते हैं। सृष्टि–प्रक्रिया का पुराण सम्मत व्याख्या करते हुए ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि सात द्वीप, सात नाक(स्वर्ग) तथा सात पाताल वाले लोक को ब्रह्माण्ड कहते हैं।[15]

सृष्टि के पूर्व सम्पूर्ण संसार तम में विलीन था। सर्वत्र जल ही जल था। केवल एकमात्र ब्रह्म ही शेष थे, जिनके मन में सृष्टि की कामना उत्पन्न हुई और उन्ही से इस सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। सृष्टि की इसी इच्छा की पूर्ति

के लिए ब्रह्म ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुआ। जिसे ही हिरण्यगर्भ या प्रजापति के नाम से जाना जाता है। पुराणों में अनेक सृष्टियों का वर्णन मिलता है। जो इस प्रकार है–

**ब्राह्मी –सृष्टि :** ब्रह्मा के जन्म से सम्बद्ध होने के कारण इस सृष्टि को ब्राह्मी सृष्टि कहा जाता है। ऋग्वेद के दशवें मण्डल के प्रजापति सुक्त में कहा गया है कि सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ उतपन्न होते ही सम्पूर्ण प्राणियों के एकमात्र स्वामी बन गये। इसी हिरण्यगर्भ का उपनिषदों ने भी ब्रह्मा के नाम से तादात्म्य स्थापित किया है। इस सृष्टि को हम हिरण्यगर्भ अवस्था कह सकते हैं। अन्यत्र भी सृष्टि की इस अवस्था, जिसमें हिरण्यगर्भ ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि है, वर्णन मिलता है।[16]

**रौद्री सृष्टि :**ब्रह्माजी ने सबसे पहले मन से सनक, सनन्दन आदि को उत्पन्न किया था, वे निरपेक्ष होने के कारण सृष्टिकार्य में प्रवृत्त नहीं हुए। वे सभी ज्ञान–सम्पन्न, विरक्त और मत्सरादि दोषों से रहित थे। उनको संसार रचना से उदासीन देखकर ब्रह्माजी को त्रिलोकी को भष्म करने कर देने वाला क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपनी टेढ़ी भृकुटी और क्रोध संतप्त ललाट से मध्यकाल के सूर्य के समान देदीप्यमान रुद्र की उत्पत्ति की।[17]

**अंगज सृष्टि :** ब्रह्मा जी ने मन से सृष्टि करने के उपरान्त अपने शरीर के अंगो से सृष्टि का विस्तार करने के लिए संकल्प किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने मुख से सर्वप्रथम सत्वप्रधान प्रजा को उत्पन्न किया। उन्होंने अपने वक्षःस्थल सं रजःप्रधान तथा जंघाओं से रज और तम से युक्त सृष्टि किया तथा अपने चरणों से तमःप्रधान प्रजा को उत्पन्न किया। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र –ये चारों क्रमशः ब्रह्मा जी के मुख, वक्षःस्थल, जानु और चरणों से उत्पन्न हुए।[18]

**मानवी एवं मैथुनी सृष्टि :** श्रीमद्भागवतपुराण में मानवी एवं मैथुनी सृष्टि के सम्बन्ध में अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इस पुराण के अनुसार जिस समय यथोचित कार्य करने वाले ब्रह्मा जी दैव के विषय में विचार कर रहे थे उसी समय उनका शरीर दो भागों में विभक्त हो गया। उन दोनों भागों से स्त्री–पुरुष का एक युगल उतपन्न हुआ।।[19] पुरुष भाग सारभौम सम्राट स्वायम्भुव मनु हुआ तथा स्त्रीभाग उस मनु की महारानी शतरूपा रूप में उतपन्न हुई। उन दोनों के मिथुन–धर्म से पांच सन्तानें उत्पन्न हुई जिनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम वाले दो पुत्र तथा आकूति, देवद्रूति और प्रसूति नामवाली तीन कन्यायं हुई। विष्णुपुराण के अनुसार रुद्र प्रचण्ड शरीर आधा नर और आधा नारी रूप था। रुद्र ने ब्रह्मा से आदेश प्राप्त कर अपने शरीर के दोनों भागों का अलग किया। उसने पुरुष भाग को ग्यारह भागों में तथा स्त्री–भाग को सौम्य–क्रूर, शान्त–अशान्त, श्याम गौर आदि कई रूपों में विभक्त किया।[20]

पुराणों में सम्पूर्ण सृष्टि का विभाजन विविध प्रकार से किया गया है किन्तु नौ प्रकार की सृष्टियों का विवरण प्रायः पुराणों में उपलब्ध होता है। जो इस प्रकार है–

ब्रह्माजी के द्वारा उत्पन्न सृष्टि में सगसे पहले महत्तत्व का आविर्भाव हुआ। इसे ही प्रथम सर्ग कहा गया है। तन्मात्राओं की द्वितीय सृष्टि हुई। इस सृष्टि का भूतसर्ग के नाम से भी स्मृत किया गया है। तृतीय सृष्टि वैकारिक की है जिसे इन्द्रिय सम्बन्धी सर्ग भी कहते हैं। चौथा मुख्य सर्ग है। पर्वतादि स्थावर इसी सृष्टि के अन्तर्गत आते हैं। तिर्यक् स्रोतस की पांचवीं सृष्टि है। इसे तिर्यक योनि भी कहा जाता है। ऊर्ध्व स्रोताओं का छठाँ सर्ग है जो ''देवसर्ग'' के नाम से भी जाना जाता है। अर्वाक् स्राताओं का सातवाँ सर्ग है जिसे मनुष्य सर्ग भी कहते हैं। आठवाँ अनुग्रह सर्ग है जो सात्विक और तासम दोनों गुणों से युक्त है। इस प्रकार प्रथम तीन सृष्टि को प्राकृत सर्ग तथा

बाद के पाँच सर्गों को वैकृत सृष्टि के नाम से जाना जाता है, इन आठ सृष्टियों के पश्चात् नवाँ कौमार सर्ग हुआ जो प्राकृत और वैकृत भेद से दोनों प्रकार का है।[21]

गरुड़ पुराण के अनुसार इस सारशून्य संसार के सागर में शरीर की रचना इन्द्रजाल जैसी है। तदनुसार स्त्री क्षेत्र है, ओषधिपात्र है और अमृताशन बीज होता है। पुरुष इस बीज का वपन करने वाला है। वहीं पर जन्तु का निषेध होता है। पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज के संयोग से गर्भ पिण्ड की उत्पत्ति होती है। काम–चित्त और शुक्र जब एकत्व को प्राप्त होते हैं तब उस समय स्त्री के गर्भाशय में नर द्रव रूप को प्राप्त होता है। जब स्त्री के रज की अधिकता होती है तब नारी पिण्ड की उत्पत्ति होती है और जब पुरुष वीर्य की अधिकता होती है तब पुरुष पिण्ड की उत्पत्ति होती है। रज–वीर्य दोनों के समान होने पर नपुसंक का प्रादुर्भाव होता है। एक दिन और रात्रि में गर्भकालिलावस्था को प्राप्त होता है। पाँचवें दिन वह बुदबुद बनता है। दसवें दिन मांस से मिला हुआ वह धातुयुक्त लोथड़ा जैसा हो जाता है। बीस दिन में घने मांस वाला वह गर्भ में स्थित क्रम से बढ़ता है। पच्चीस दिन पूरे हो जाने पर उसमें कुछ बल और पुष्टि आती है। एक मास के पूरे होने पर वह पाँचों तत्वों को धारण कर लेता है। दो मास पूरा होने पर उस गर्भस्थ में त्वचा और भेद उत्पन्न हो जाते है। तीन महीने में मज्जा और अस्थियां तथा चौथे मास में केश और गुल्फ उत्पन्न हो जाते है। पांच महीने में कान , कुक्षि और नाक उत्पन्न होते हैं। कण्ठ–छिद्र, पीठ–गुह्येन्द्रिय ये सब सातवें मास में होते हैं। आठवें मास में गर्भ अंग–प्रत्यंग से पूर्ण हो जाता है। नवाँ महीना प्राप्त होने पर गर्भस्थ जीव में स्वयं रति और इच्छा उत्पन्न हो जाती है कि वह गर्भ से बाहर आवे। तदन्तर पिण्ड उत्पन्न होता है। यह जो भौतिक शरीर है वह प्रसूति के वायु से आकृष्ट होता हुआ पीड़ा से विह्वल होता है। यह क्षित्यादि पंचभूतों से पीड़ित एवं स्नायुओं से बँधा होता है। लार, मूत्र, शुक्र, मज्जा और रक्त ये पाँच जल के गुण हैं। क्षुधा, निद्रा, तृष्णा, आलस्य और कान्ति ये पाँच तेज के गुण है। धावन, श्वसन–आकुंचन–प्रसारण और निरोध– शरीर में ये वायु के पाँच गुण हैं। राग–छिद्र, गाम्भीर्य–श्रवण और सर्वसंश्रय –ये पाँच गुण इस शरीर में आकाश तत्व के हैं। इस शरीर में प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कूकर, देवदत्त और धनंजय नामक दस प्रकार की वायु शरीर में स्थित है। खाये हुए अन्न को प्राण देने वाला वायु सभी संधियों में ले जाया करता है।

वेदान्तसिद्धान्तमतमार्तण्ड के अनुसार अनिर्वाच्य, अनादि, अविद्या, दोनों शरीरों का कारण अपने सत् स्वरूप का अज्ञान तथा निर्विकल्प रूप तीनों अवस्थाओं में जो स्थिति है वह कारण शरीर कहा गया है। उस कारण शरीर का जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ हैं। जाग्रत अवस्था में जीव श्रोतादि इन्द्रियों से शब्दादि विषयों को ग्रहण करता है। जाग्रत अवस्था में जो देखा और सुना गया है उससे उत्पन्न वासनामय निद्रा के समय में प्रपंच की जो प्रतीति होती है वह स्वप्नावस्था है। स्वप्नावस्था में स्थित सूक्ष्म शरीर का अभिमानी आत्मा तैजस् कहलाता है। सुखपूर्वक सोया, इस प्रकार निद्रा में जो अनुभव होता है, वह सुषुप्तावस्था है।[22]

**सन्दर्भ :**


1. पुराणेष्वेष बहवो धर्मास्ते.....। वायु पुराण 104/11–17
2. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं चेति पुराणं पंचलक्षणम्।। भागवत पुराण तथा विष्णु पुराण 3.6.24।

3. भूतमात्रेन्द्रिसधियां जन्मसर्ग उदाहृतः।

ब्रह्मणा गुण वैषम्याद् विसर्गः पौरुषः स्मृतः।। भागवत पुराण 2.10.3

4. अव्याकृंत गुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोहमः।

भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते।। वही, 12.7.11

5. ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिवठ्यते। विष्णुपुराण 1.2.12
6. विष्णुपुराण 1.2.10–15 एवं पद्मपुराण सृष्टि–खण्ड 2/83–86
7. सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका।

स संज्ञायाति भगवानेक एव जनार्दनः।। विष्णुपुराण 1.2.66

8. परस्य ब्रह्मणोरूपं पुरुषः प्रथमं द्विज।

व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपेकालस्तथा परम्।। वही– 1.2.15

9. अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृते परः।

प्रत्यग्धामा स्वयं ज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम्।। भागवत पुराण 3.26.3

10. सत्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम्।

साम्यावस्थितिरे तेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता।। मत्स्य पुराण 3/14

11. वायु पुराण– 1/41
12. प्रकृतेर्लक्षणं वक्तुं न कोऽपि क्षमो भवेत्। देवीभ0 2.2.8,9
13. प्रधान पुरुषाव्यक्तकालास्तु प्रविभागशः। व्यक्तं विष्णुतथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च। क्रीडतो बालकस्यैव चेष्टां तस्य निशामय।। वि0 पु0 1.2.17–18
14. भागवत पुराण 3.5.21–22
15. सप्तद्वीपैः सप्तनाकैः सप्तपातालसंज्ञकैः। एभिर्लोकैश्च ब्रह्माण्डं ब्रह्मादिकृतमेव च।। ब्रह्मवै0 पु0 1.7.14
16. प्रजापतिर्वा एकोऽग्रेऽतिष्ठत्स नारमतैकः सोत्मामभिहध्यात्वा वाह्वी प्रजा असृजत्। मैत्रा0 1/6
17. विष्णुपुराण 1.7.8, 10, 12
18. वही – 1.6.3–6
19. एवं युक्त कृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा। ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत।। भा0पु0 3.12.51, 52
20. वि0पु0 1.7.13–15
21. वही– 1.5.19–25
22. वेदान्त सिद्धान्त मार्तण्ड, पृष्ठ